इस्लाम में बीवी और शौहर के हुक़ूक़

हुज्जतुल इस्लाम मोलाना मो0 सुहफी साहब
अनुवादक : क़ायम महदी नक़वी तज़हीब नगरौरी

अकेला मर्द एक नाक़िस वजूद है और इसी तरह अकेली औरत भी एक नाक़िस वजूद है। इनके नाक़िस होने की वजह यह है कि नसल को बाक़ी रखने और ज़िन्दगी की तश्कील में दोनों एक दूसरे के मोहताज हैं।

शरअी और क़ानूनी शादी दोनों की कमियों को दूर करती है और इनके वजूद को सामने लाने का सबब बनती है। नसल के बाक़ी रखने के मसले के अलावह हर मर्द और औरत के लिए जिसमानी और रूहानी सेहत और ज़िन्दगी की नेअमतों को सही तौर पर समझने के लिए भी ख़ानदान की तशकील ज़रूरी है।

जो औरतें और मर्द अकेलेपन की ज़िन्दगी बसर करते हैं उन्हें ज़ियादातर जिस्मानी और नफसियाती तकलीफों में मुबतला होने का ख़तरा रहता है क्योंकि अगर जिन्सी ख़्वाहिशात को दबा दिया जाए तो इसका नतीजा वहशतनाक बीमारियों की सूरत में निकलता है और अगर वह आज़ाद और आवारा ऊँट की तरह हो जाएँ और ख़िलाफे शरअ तरीक़ों से इन ख़्वाहिशात को पूरा करें तो इसके ज़ियादा ख़तरनाक नतीजे सामने आते हैं।

शादी और ख़ानदान के तश्कील की ज़रूरी शर्तें पूरी करते हुए इन कामों को अन्जाम देना फितरत का फरमान और ख़िलक़त का ऐसा क़ानून है जिसकी मुख़लेफत से बड़ी संगीन सज़ा मिलती है। जो औरत और मर्द इस अहम काम को शादी के रिश्ते के ज़रिए अन्जाम दें उन्हें चाहिए कि इस रिश्ते के ज़रिए उन पर जो फराएज़ और ज़िम्मेदारिया बनती हैं उनकी तरफ तवज्जो दें और ख़ुशहाल ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए अपने फराएज़ पर पूरा—पूरा अमल करें।

अपनी शादी की बुनियाद हवा व हवस और नफ्सानी ख़्वाहिशात पर न रखें और माल व दौलत या हुस्न व जमाल के लिए शादी न करें क्योंकि ऐसे रिश्ते कमज़ोर और ऐसी शादियाँ बेबुनियाद होती हैं। उन्हें चाहिए कि इस काम से जो अज़ीम मक़सद सामने होना चाहिए उसे न भूलें और काफी सोंच समझ कर और छान बीन करके अपने आने वाले जीवन साथी का चुनाव बाईमान, अक़्लमन्द और लायक़ अफ़राद में से करें।

औरत और मर्द, औरत होने या मर्द होने कि बिना पर एक दूसरे पर कोई बरतरी नहीं रखते। दुनिया के पैदा करने वाले की नज़रों में दोनों इन्सान हैं और अपने—अपने हुक़ूक़ रखते हैं। अल्लाह तआला कुर्आन मजीद में फरमाता हैः—

''ऐ लोगों! हमने तुम्हें मर्द और औरत (आदम और हौव्वा) की नस्ल से पैदा किया और तुम्हें गिरोहों और क़बीलों में बाँट दिया ताकि तुम एक—दूसरे को पहचान सको (लेकिन यह क़बीलों और गिरोहों का इख़्तेलाफ बड़ाई की निशानी नहीं है) बेशक तुम में से अल्लाह के नज़दीक ज़ियादा बाइज़्ज़त वही है जो ज़ियादा परहेज़गार हो।'' (सूर—ए—हुजरात आयत—13)

हर दूसरे निज़ाम की तरह घर की तरतीब व निज़ाम के लिए भी एक सरपरस्त और ज़िम्मेदार की ज़रूरत होती है क्योंकि हर वह तन्ज़ीम जिसमें कोई ज़िम्मेदार और जवाबदेह शख़्स न हो उसकी ख़राबी और बर्बादी एक यक़ीनी बात है।

अब यह देखना चाहिए कि इस तन्ज़ीम (यानि घर और ख़ानदान) की फलाह और कामयाबी

को सामने रखते हुए किसको ज़िम्मेदार और जवाबदेह ठहराया जाए, मर्द को, औरत को, या दोनों को?

बेशक मर्द और औरत दोनों के ज़िम्मेदार बन जाने से न सिर्फ यह कि मुश्किल हल नहीं हो सकती बल्कि परेशानी और बदनज़मी में इज़ाफा होता है क्योंकि तजुर्बे से साबित हो चुका है कि किसी इदारे के दो ज़िम्मेदार होना कोई ज़िम्मेदार न होने से ज़ियादा नुक़सानदेह है और जिस ममलकत के दो मुस्तक़िल हुक्मराँ हों वह हमेशा बदनज़मी का शिकार रहती है।

बदनज़मी के एलावह अगर माँ और बाप में घर की ज़िम्मेदारी के सिलसिले में इख़्तेलाफ और कशमकश हो तो माहेरीने नफसियात के ख़याल के मुताबिक़ जो बच्चे ऐसे घर में तरबियत पाएँ वह रूहानी और जिसमानी पेचीदगियों और ख़लले दिमाग़ का शिकार हो जाते हैं।

ऊपर दी हुई मुश्किलात को सामने रखते हुए इस बात में कोई शक बाक़ी नहीं रहता कि घर और ख़ानदान के मामलों की ज़िम्मेदारी मर्द या औरत में से किसी एक के ज़िम्मे होनी चाहिए और इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि अपनी जिसमानी बनावट और ज़हनी रुजहान की बदौलत मर्द इस ज़िम्मेदारी से अलग होने का ज़ियादा अहल है।

माहिरीन और दानिश्मन्दों की तस्दीक़ के मुताबिक़ जहाँ तक जज़्बात का ताल्लुक़ है औरत को मर्द पर बरतरी हासिल है और सोंच विचार के मामले में मर्द ऊपर है और चूँकि इन्तिज़ामी मामलों के लिए अक़ल और फिक्र की ज़ियादा ज़रूरत होती है लिहाज़ा अक़्ले सलीम यह हुक्म देती है कि ख़ानदान के चलाने की ज़िम्मेदारी मर्द के कन्धों पर डाली जाए और ज़िम्मेदारी और सरपरस्ती का काम उसके ज़िम्मे किया जाए।

इस्लामी क़ानून की नज़र में भी फितरत का हुक्म यही है चुनानचे कुर्आने मजीद में इरशाद हुआ है:–

''उन खुसूसियात की बिना पर जो अल्लाह ने उन्हें अता फरमायी हैं और उन माली ज़िम्मेदारियों की वजह से जो उन्होंने (अपनी बीवी के ख़र्च के सिलसिले में) कुबूल की हैं मर्द, औरत के ज़िम्मेदार हैं।'' (सूर–ए–निसा आयत–34)

अपनी बीवी की बनिस्बत मर्द की ज़िम्मेदारी दुनिया के तमाम मुल्कों में तसलीम की जाती है और औरतें भी इस सूरते हाल से ख़ुश हैं।

फ्रांस के जदीद क़ानून की दफा 213 के हिसाब से घर की ज़िम्मेदारी, इन्तिज़ाम और सरपरस्ती मर्द के ज़िम्मे हैं और दूसरी क़ौमों के क़ानूनों में भी क़ानून या रिवायत के मुताबिक़ यही सूरत है।

अल्लाह तआला ने ख़ानदानी मामलों के निज़ाम और ज़िम्मेदारी मर्द के ज़िम्मे की है और यह वज़ीफा उसे सौंप दिया है। मर्द को यह ज़िम्मेदारी देने की वजह यह है कि वह जिस्मानी लेहाज़ से ज़ियादा ताक़तवर है और सख़्त काम करने और अपने अहलो अयाल का बचाव करने का ज़ियादा अहल है।

जिस्मानी और रूहानी लिहाज़ से औरत की बनावट एक ख़ास बारीकी रखती है और उसके जज़्बात और एहसासात भी नाज़ुक होते हैं। इसके अलावह औरत अपनी माहाना कमज़ोरी के दिनों में, हमल के दौरान और बच्चे को दूध पिलाने की मुद्दत में न सिर्फ यह कि लामहदूद सरगर्मियों की ताक़त नहीं रखती बल्कि किसी दूसरी तरफ से सरपरस्ती और देखभाल की मोहताज होती है।

मर्द का अपने ख़ानदान का ज़िम्मेदार होने का मतलब यह नहीं है कि वह दूसरों का मालिक है और वह उसके गुलाम हैं बल्कि इससे मुराद यह है कि मर्द ने ख़ानदान की माली मदद, ज़हनी परवरिश और जिसमानी हिफाज़त की जो ज़िम्मेदारियाँ संभाली हैं उनकी बिना पर वह ज़िम्मेदार कहला सकता है लेकिन इसके इख़्तियारात की

हदें अल्लाह तआला की तरफ से क़तआी तौर पर मुतअैय्यन कर दी गयी हैं और उसे माकूलियत की हद से आगे बढ़ने से रोक दिया गया है।

यह बात भी ध्यान देने के क़ाबिल है कि इस्लाम ने मर्द को ख़ानदान के ज़िम्मेदार का रुतबा अता करते वक़्त औरत की इज़्ज़त की चाहत को नज़रअन्दाज़ नहीं किया और उसे घर के कामों का ज़िम्मेदार बनाया है।

रसूले अकरम (स0) ने इरशाद फरमाया है:–

''हर इन्सान आज़ाद और अपने इरादे का मालिक है। मर्द को घर वालों के इन्तिज़ाम और औरत को घरदारी के मामलों में आज़ादी और इख़्तियार हासिल है।''

रसूल अकरम (स0) ने फरमाया है :–

''तुम सब अपने–अपने हिस्से के सरपरस्त और निगराँ हो और सभी अपनी–अपनी ज़िम्मेदारी के लिए जावब देने वाले हो। हाकिम और इमाम क़ौम के लिए जवाब देने वाला है, मर्द ख़ानदान के लिए जवाबे देने वाला है, औरत घर के कामों और औलाद के लिए जवाब देने वाली है और जो कोई जितना इख़्तियार रखता है उसके लिए जवाब देने वाला है और जो फराएज़ अल्लाह तआला ने उसके ज़िम्मे किये हैं उनके अन्जाम देने का ज़िम्मेदार है।'' (सहीह बुख़ारी जिल्द–3 बाबुन्निकाह)

इसके अलावह कुर्आने मजीद में मर्दों को खुले तौर पर याद दहानी करायी गयी है कि :–

''अपनी बीवियों से नेकी और मेहरबानी का सुलूक करो और ना इन्साफी और बदज़बानी से परहेज़ करो।'' (सूर–ए–निसा आयत–19)

□□□ (जारी)

(बक़िया इमाम हसने मुजतबा अ0 ...)

छोटे भाई हज़रत इमामे हुसैन (अ0) से अलग सोंच रखते थे और वह सुलह उनकी अकेली सोंच का नतीजा थी। ख़ुद उमवी हाकिमे शामी के अमल से भी ग़लत साबित हो जाता है इस तरह कि अगर यह बाद वाला प्रोपगण्डा सही होता तो इस सुलह करने के बाद हाकिमे शाम को हज़रत इमाम हसन (अ0) से बिलकुल मुतमइन हो जाना चाहिए था बल्कि हाकिमे शाम की तरफ से हक़ीक़त में फिर इमामे हसन (अ0) की क़द्र व मन्ज़िलत के मुसलमानों में बढ़ाने और नुमायाँ करने की कोशिश की जाती। बेशक जिस तरह मशहूर रिवायत की बुनियाद पर जनाबे अक़ील को हज़रत अली बिन अबी तालिब (अ0) से बज़ाहिर जुदा करने के बाद उनकी ख़ातिर दारियों में कोई कसर नहीं छोड़ी गयी थी। यही बल्कि इससे ज़ियादा हज़रत इमाम हसन (अ0) के साथ होता मगर ऐसा नहीं हुआ। सुलह करने के बाद भी इमामे हसन को आराम और चैन नहीं लेने दिया गया और आख़िरकार ज़हर देकर आपको शहीद कर दिया गया। इसी से ज़ाहिर है कि हाकिमे शाम भी जानते थे कि यह राय, मसलक, ख़याल और तबीअत किसी एतबार से भी अपने बाप, भाई से जुदा नहीं हैं। यह और बात है कि उस वक़्त इन्हें फ़र्ज़ का तक़ाज़ा यही महसूस हुआ लेकिन अगर मसलेहते दीनी में तबदीली हो तो यही कोई नया सिफ्फीन का माअरका फिर से लगा सकते थे और इन्हीं के हाथ से कर्बला भी सामने आ सकती थी इसीलिए इनकी ज़िन्दगी इस के बाद भी इनके सियासी मक़ासिद के लिए ख़तरा बनी रही और जब इनकी शहादत की ख़बर मिली तो उन्होंने चैन की साँस ही नहीं ली बल्कि अपने सियासी बर्दाश्त के दायरे से बाहर निकलकर एलानिया उन्होंने खुशी से नार–ए–तकबीर बुलन्द किया। इससे साफ ज़ाहिर है कि हसने मुजतबा (अ0) की सुलह किसी ख़ास सोंच और तबीअत का नतीजा नहीं थी, वह सिर्फ फ़र्ज़ के उस एहसास का तक़ाज़ा थी जो इन्सानी बुलन्दी की मेराज है।

□□□